International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at http://euroasiapub.org/journals.php
Vol. 6 Issue 11, November 2016
ISSN: 2249-7382 Impact Factor: 6.225 | Thomson Reuters ID: L-5236-2015

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दाम्पत्यजीवन के सन्दर्भ और उनकी प्रासङ्गिकता

डॉ. सीताराम गुर्जर
सह आचार्य (साहित्य)
राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय, दौसा

महाकवि कालिदास की कृतियों में दाम्पत्यजीवन के अनेक ऐसे प्रसङ्ग परिलक्षित होते हैं जिनकी प्रासङ्गिकता आज भी अक्षुण्ण है । महाकवि की कृतियों में अभि ज्ञानशाकुन्तलम् एक ऐसा नाटक है जो विश्व साहित्य का सर्वाधिक समादरणीय अङ्ग माना जाता है । भारतीय समीक्षकों का यह स्पष्ट अभिमत है कि काव्य की विभिन्न विधाओं में नाटक सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक सुन्दर विधा है ।

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला ।

इस नाटक में महाराज दुष्यन्त एवं शकुन्तला के प्रेम प्रसङ्गों तथा उनके दाम्पत्यजीवन का बड़ा ही सजीव चित्रण है । यह आप की युवा-पीढ़ी के लिए शिक्षाप्रद तो है ही, साथ ही इसमें सुखमय दाम्पत्य-जीवन के आवश्यक तत्त्वों का बड़ा सूक्ष्म विवेचन किया गया है ।

महाराज दुष्यन्त शिकार खेलने के क्रम में संयोगवश उस तपोवन में पहुँच जाते है जहाँ महर्षि कण्व का आश्रम अवस्थित था । लेकिन जिस समय दुष्यन्त कण्व के आश्रम में पहुंचते हैं , उस समय ऋषि शकुन्तला के ग्रह-दोष की शान्ति के लिए सोमतीर्थ की यात्रा पर थे । अत: दुष्यन्त को ऋषि कन्याओं से खुलकर बातें करने का मौका मिल जाता है । बात-बात में ही उन्हें पता चल जाता है कि शकुन्तला ऋषि कन्या नहीं है , बल्कि मेनका और राजर्षि विश्वामित्र के संयोग से उसका जन्म हुआ है । अत: वह उनके द्वारा पत्नी रूप में ग्राह्य है -

"असंशय क्षत्रपरिग्रह क्षमा यदार्यमस्यामभिलाषी मे मन: ।
सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त: करणप्रवृत्तय: " ।।

इसके अतिरिक्त शकुन्तला के बाह्य सौन्दर्य पर भी अत्यधिक अनुरक्त हो जाते है । यहाँ दुष्यन्त के प्रथम आकर्षण का कारण उनका शारीरिक सौन्दर्य ही था[ii] । वे एक तरह से शकुन्तला के प्रेम में पागल होकर कामान्ध नायक जैसा आचरण करने लगते हैं । उधर शकुन्तला की स्थिति भी उनसे कुछ विशेष भिन्न प्रतीत नहीं होती । वह भी उनमें अनुरक्त होकर अप नी सुध-बुध खो देती है और का म-ज्वर से पीड़ित रहने लगती है , दोनों में से किसी को भी आश्रम की मर्यादा और उसकी पवित्रता का ध्यान नहीं रहता । अन्ततः दोनों का गान्धर्व -विवाह सम्पन्न हो जाता है । इस सम्बन्ध में न तो दुष्यन्त अपने कुटुम्बियों से कोई परामर्श करते हैं और शकुन्तला ही अपने धर्मपिता कण्व की अनुमति की प्रतीक्षा करती है । दोनों ही कामार्त होकर प्रेम-प्रवाह में बह जाते है , जिसकी चरम परिणति गान्धर्व-विवाह में फलित होती है । इसकी सूचना हमें नाटक के चतुर्थ अंक के प्रारम्भ में मिलती है – **"गान्धर्वेण विधिना निर्वृत्तकल्याणा शकुन्तलाऽनुरूपभर्तुगामिनी संवृत्तेति निर्वृत्तं मे हृदयम्** [iii]" । लेकिन शकुन्तला की सखी अनुसूया के मन में यह शङ्का बनी ही रहती है कि राजा दुष्यन्त आश्रम से प्रस्थान करने के पश्चात् अपने अन्त:पुर में पहुँच कर शकुन्तला की सुधि लेता भी है या नहीं ।

अनुसया की शङ्का निराधार नहीं प्रतीत होती । महर्षि कण्व जब आश्रम में वापस लौटते है तब उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्त का पता चल जाता है और वे तत्काल शकुन्तला को उसके पति-गृह भेजने का प्रबन्ध कर देते है । जब शकुन्तला गौतमी, शारङ्गरव और शारद्वत के साथ दुष्यन्त के दरबार में पहुँचती है तो दुष्यन्त शकुन्तला के प्रेम प्रसङ्ग को सर्वथा भूल बैठता है । इसका कारण का लिदास की दृष्टि में चाहे दुर्वा सा का शाप हो या महाभारतकार के अनुसार सामाजिक मर्यादा के उल्लंघन का भय हो ।

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at http://euroasiapub.org/journals.php
Vol. 6 Issue 11, November 2016
ISSN: 2249-7382 Impact Factor: 6.225 | Thomson Reuters ID: L-5236-2015

महाकवि कालिदास भी चुपचाप किए गए ऐसे प्रेम सम्बन्ध के पक्षधर नहीं दिखाई देते। ये इसके लिए दुष्यन्त और शकुन्तला, दोनों को यथा स्थान कोसने से बाज नहीं आते हैं। नाटक के पञ्चम अङ्क में गौतमी की उक्ति द्रष्टव्य है। वह राजा दुष्यन्त को कहती है कि - आर्य ! मैं भी कुछ पूछना चाहती हूँ। यद्यपि मुझे आप लोगों के बीच में कुछ भी बोलना नहीं चाहिए क्योंकि न तो इसी ने अपने बड़ों से कुछ कहा सुना, न आपने ही इसके सगे सम्बन्धियों से कोई पूछताछ की। इसलिए जब आप लोगों ने आपस में ही सब कुछ कर डाला है तब में आप दोनों को भला कहूँ क्या[iv] ?

इसके अतिरिक्त शारङ्गरव की उक्तियाँ भी समान रूप से ध्यातव्य है। वह राजा द्वारा कुतता को स्वीकार किये जाने के पक्ष में अपने तर्क प्रस्तुत करते हुए कहता है कि – "आप तो लोकाचार की सभी बाते जानते है फिर ऐसा क्यों कह रहे है। जो सुहागिन स्त्री अपने पिता के घर रहती है वह पाहे जितनी भी पतिव्रता हो फिर भी उसके सम्बन्ध में लोग बड़ी उल्टी-सीधी बातें उड़ा दिया करते हैं। इसलिए वह युवती चाहे सबकी दुलारी ही क्यों न हो, पर उसके भाई-बन्धु लोग तो यही चाहते हैं कि यह अपने पति के ही पास रहे –

"सतीमपि ज्ञातिकुलैकसंश्रयां जनोऽन्यथा भर्तृमतीं विशङ्कते।
अतः समीपे परिणेतुरिष्यते प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः[v]" ।।

आज के सन्दर्भ में भी गौतमी और शारङ्गरव की उक्तियाँ प्रेम सम्बन्ध के विषय में समीचीन प्रतीत होती हैं। कामावेश अथवा भावावेश में किये गए ऐसे प्रेम सम्बन्ध प्रायः स्थायी नहीं होते, बल्कि लोकापवाद और अन्य कारणों से अन्ततः टूटते दिखाई देते हैं। वस्तुतः वैवाहिक सम्बन्ध हमारी सामाजिक संरचना में मात्र वैयक्तिक विषय ही नहीं है बल्कि एक सामाजिक कृत्य भी है जिसे समाज की स्वीकृति भी आवश्यक समझी जाती है। दूसरी बात यह भी परिक्षित होती है कि विवाहोपरान्त सुखमय दाम्पत्य के लिए पति और पत्नी का साथ रहना भी व्यावहारिक ही नहीं, अपितु आवश्यक प्रतीत होता है, पति के दैनिक धार्मिक कृत्यों एवं सामाजिक दायित्वों के निर्वाह में पति के लिए पत्नी की सहभागिता सर्वथा अपेक्षित है। तभी तो महर्षि कण्व दुष्यन्त के लिए भेजे गए अपने संदेश में यह कहते हैं कि "अब आप इस गर्भवती को अपनी धर्मपत्नी बना कर ग्रहण कर लीजिए[vi]। यहाँ कण्व की उक्ति में "सहधर्माचरण" शब्द महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। भारतीय सामाजिक संरचना में पत्नी को अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। उसके बिना पति को कोई भी धार्मिक कृत्य करने का अधिकार नहीं है। पति यदि गृहत्यागी है तो पत्नी गृहस्वामिनी है। दोनों के परस्पर सहयोग से ही गृहस्थी की गाड़ी का सम्यक् संचालन संभव है।

जब शकुन्तला को स्वीकार करने में दुष्यन्त अपनी असमर्थता प्रकट करता है, तब शकुन्तला के साथ आए लोग उसे अपने भाग्य पर जीने-मरने के लिए छोड़कर आश्रम की ओर प्रस्थान कर देते है। प्रस्थान करते समय शारङ्गरव शकुन्तला को सम्बोधित करते हुए कहता है कि - शकुन्तले यदि राजा की बात सत्य है तो तुम जैसी कुल-कलंकिनी का पिता के घर कोई काम नहीं है और यदि तू अपने को पवित्र समझती है तो तुझे दासी बनकर भी अपने पति के ही घर में रहना चाहिए –

यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि किं पितुरुत्कलय् त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचि व्रतमात्मनः पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्[vii] ।।

शारङ्गरव की उपर्युक्त उक्ति से दो बातें स्पष्ट हो जाती है कि कुलटाओं के लिए समाज में स्थान नहीं होता। वे मर्यादाहीन हो जाती है। मात्र कामा वेश में आ कर प्रेम-सम्बन्ध स्थापित करने पर सामाजिक मर्यादाएँ तो होती ही है, साथ ही प्रेमी युगल भी लोकापवाद से बच नहीं पाते और उनका जीवन अशान्त एवं विपत्तिग्रस्त हो जाता है। अगर प्रेम सम्बन्ध स्थापित हो भी जाय तो उसे सहर्ष स्वीकार करने का नैतिक साहस होना चाहिए; तभी सुखमय दाम्पत्य जीवन व्यतीत कर शान्ति और समृद्धि की कामना की जा सकती है

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at http://euroasiapub.org/journals.php
Vol. 6 Issue 11, November 2016
ISSN: 2249-7382 Impact Factor: 6.225 | Thomson Reuters ID: L-5236-2015

। दूसरी बात यह है पतिव्रताओं के लिए पतिगृह ही उसका अपना घर होता है । अभिभावकों की सम्मति और सामाजिक स्वीकृति मिल जाने पर दाम्पत्य जीवन निर्विघ्न बन जाता है । पति या पत्नी में अपने दायित्व बोध के प्रति जागरुकता उत्पन्न होती है । उन्हें समाज से कुछ पाने का और समाज को कुछ देने का अधिकार प्राप्त हो जाता है ।

उपर्युक्त तथ्यों की सम्यक् परिपुष्टि नाटक के सप्तम अंक से हो जाती है । राजा दुष्यन्त से परित्यक्त होकर हताश शकुन्तला जब दुष्यन्त के कुल पुरोहित के साथ आगे मार्ग पर बढ़ती है तब अप्सरातीर्थ के समीप उसकी माँ मेनका से यह हृदयद्रावक दृश्य नहीं देखा जा सका । मातृ हृदय की वात्सल्यमयी ममता ने शकुन्तला को उस स्थिति से उबारने के लिए उसे विवश कर दिया । वह अपना दिव्य रूप धारण करती है और कुन्तला को यहाँ से उठा कर मारी च ऋषि के आश्रम तक ले जाती है और वहाँ दाक्षायणी के संरक्षण में रख देती है । य हीं शकुन्तला अपने पुत्र -रत्न को जन्म देती है और पुत्र के साथ ही आश्रम में सती-साध्वी स्त्री का जीवन व्यतीत करने लगती है ।

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान्।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रियतं तत् समागतम्[viii] ।।

अर्थात् संयोगावशात् दुष्यन्त इन्द्र-सारथी मातलि के साथ मारीच के आश्रम में आ पहुँचते हैं, तब वहीं दुष्यन्त, शकुन्तला और पुत्र सर्वदमन (भरत) मिल जाते हैं ।

अब तक दुष्यन्त शाप मुक्त हो चुके थे । उन्हें अपने किये पर अपार दुःख था । ये पश्चाताप की आग में तप कर शुद्ध सोने की तरह निर्मल और हो चुके थे । इधर तपस्विनी शकुन्तला भी पातिव्रत्य धर्म के परिपालन से सर्वथा शुद्ध और पवित्र बन गई थी । दोनों की चित्तवृत्ति शारीरिक शृङ्गार से हट कर सात्विक प्रेम से परिपूर्ण हो चुकी थी । परस्पर श्रद्धा और वि श्वास के भाव अंकुरित होकर पल्लवित और पुष्पित हो चुके थे ; और अन्ततः इन दोनों को गुरुजनों का आशीर्वाद भी प्राप्त हो जाता है [ix] । तत्पश्चात् महर्षि मारीच के अनुज्ञात होकर राजा दुष्यन्त अपनी धर्मपत्नी शकुन्तला और पुत्र सर्वदमन के साथ अपनी राजधानी लौटकर जीवन व्यतीत करने लगते हैं ।

"अभिशाकुन्तलम्" में वर्णित दुष्यन्त और शकुन्तला की प्रेम-कथा की आज भी वही प्रासङ्गिकता है जो कालिदास के समय या उसके पूर्व भी थी । इस प्रेमकथा स्पष्ट होती है जिनका आप के सन्दर्भ में भी अत्यधिक औचित्य प्रतीत होता है । दुष्यन्त महर्षि कण्व के आश्रम में जब शकुन्तला को देख ते है, तब प्रथम दृष्टि में ही उनके प्रेमपाश में आबद्ध या शकुन्तला का दुर्लभ शारिरीक सौन्दर्य । ऐसा सौन्दर्य दुष्यन्त के अन्त:पुर में भी दुर्लभ था[x] । प्रेम विवाह आज भी होते हैं और अधिकांश स्थलों में शारिरीक सौन्दर्य, सामीप्य सम्बन्ध एवं वासनाजन्य काम-भावना ही इसके मूल में सन्निहित रहती है ।

दूसरी बात जो इस प्रेम-प्रसङ्ग से ध्वनित होती है , वह यह है कि मात्र वासनात्मक भावना से प्रेरित होकर स्थापित किया गया सम्बन्ध अस्थायी एवं दुःखद होता है । आज देश या विदेश में तलाक की समस्या का यही प्रमुख कारण प्रतीत होता है । इस सम्बन्ध में कालिदास की सम्मति द्रष्टव्य है । वे कहते हैं कि "बिना सोचे समझे जो काम किया जाता है उसमें ऐसा ही दुःख मिला करता हैं । इस लिए गुप्त प्रेम बहुत सोच-विचार कर करना चाहिए क्योंकि बिना जाने बूझे स्वभाव वाले साथ जो मित्रता की जाती है वह एक न एक दिन शत्रुता बनकर ही रहती है[xi]" ।

इसके अतिरिक्त जब प्रेम मात्र वासनात्मक नहीं होता अपितु हार्दिक या आत्मिक होता है , तब प्रेमी युगल के सम्बन्ध में स्वतः स्थायीत्व आ जाता है । वे एक दूसरे के सहयोगी बनकर तथा सुखमय दाम्पत्य-जीवन व्यतीत कर अपनी लोकयात्रा सफलतापूर्वक सम्पन्न करते हैं । इसमें उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा एवं गुरुजनों का शुभाभिताष भी सहजता से प्राप्त हो जाता है । दुष्यन्त और शकुन्तला के साथ भी यही हुआ । महर्षि मारीच के

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at http://euroasiapub.org/journals.php
Vol. 6 Issue 11, November 2016
ISSN: 2249-7382 Impact Factor: 6.225 | Thomson Reuters ID: L-5236-2015

आश्रम में पहुँच कर तपस्विनी शकुन्तला तपस्या की आँच में तपकर सर्वशुद्ध एवं परम पवित्र पतिव्रता नारी का रूप धारण कर लेती है और दुष्यन्त भी मोह-मुक्त होकर पश्चाताप की आग में जलते हुए अपने हृदय को शुद्ध सोने की तरह निर्म ल और निष्कलुष बना लेते हैं । अब वे अपनी पत्नी और पुत्र को अपना कर अपने को धन्य मानने लगते है । तभी तो मारीच भी कहते है –

दिष्ट्या शकुन्तला साध्वी सदपत्यमिदं भवान् ।
श्रद्धा वित्तं विधिश्चेति त्रितयं तत्समागतम्[xii]**।।**

अर्थात् सौभाग्य से यह पतिव्रता शकुन्तला यह श्रेष्ठ बालक और तुम ये तीनों ऐसे इक ट्ठे मिल गए हो जैसे श्रद्धा, धन और क्रिया तीनों एक साथ मिल जायें ।

आज के सन्दर्भ में भी यह कहा जा सकता है कि हर पत्नी योग्यतम पति को प्राप्त करना चाहती है । इसके साथ ही दोनों परस्पर प्रेम की कामना करते हैं । हर माता-पिता वंश की वृद्धि करने वाले तेजस्वी पुत्र को प्राप्त कर अपने दाम्प त्य जीवन को धन्य बनाना चाहते है । मारी च द्वारा शकुन्तला को दिए गए आशीर्वाद महाकवि कालिदास के सुखमय दाम्पत्य सम्बन्धी विचारों की प्रासङ्गिकता स्वयं सिद्ध सी दिखाई देती है[xiii] ।

इसके अतिरिक्त महाकवि कालिदास शकुन्तला की विदाई के अव सर पर उसे कण्व के द्वारा जो कुछ उपदेश दिलवाते हैं वह किसी भी कुलवधू के लिए परम आवश्यक प्रतीत होता है । उन उपदेशों के परिपालन से आज भी गृहणियाँ अपने दाम्पत्य -जीवन को सुखमय बना कर अपने घर-परिवार में सुख-समृद्धि की अभिवृद्धि कर सकती है । बड़े-बूड़ों की सेवा, पति के प्रति प्रेम और सहिष्णुता के भाव रखना घर की अन्य महिलाओं के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार करना , सेवकों के प्रति स्नेह और सहानुभूति रखना तथा सुख समृद्धि के दिनों में भी विनम्र बने रहना किसी भी गृहिणी के लिए परम आवश्यक है ।

इस प्रकार अभिशा कुन्तलम् में व्यक्त कवि कुलगुरू कालिदास की दाम्पत्य सम्बन्धी अवधारणाएँ आप भी उतनी ही प्रासङ्गिक प्रतीत होती है जितनी कि उनके समय थी ।

---

[i] अभिज्ञानशकुन्तलम् – १/२२

[ii] अभिज्ञानशकुन्तलम् – १/२०

अधरः किसलयरागः, कोमलविटपानुकारिणौ बाहू ।
कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु सन्नद्धम् ।।

[iii] अभिज्ञानशकुन्तलम्, चतुर्थ अंक

[iv] अभिज्ञानशाकुन्तलम् – ५/१६

[v] अभिज्ञानशाकुन्तलम् – ५/१७

[vi] अभिज्ञानशाकुन्तलम्, पञ्चम अंक

[vii] अभिज्ञानशाकुन्तलम् – ५/२७

[viii] अभिज्ञानशाकुन्तलम् – ७/२९

[ix] अभिज्ञानशाकुन्तलम् – ७/२८

[x] अभिज्ञानशाकुन्तलम् – १/१७

शुद्धान्तदुर्लभमिदं **वपुराश्रमवासिनो** यदि जनस्य ।
दूरीकृताः खलु गुणैरुद्यानलता वनलताभिः ।।

[xi] अभिज्ञानशाकुन्तलम् – ५/२४

अतः परीक्ष्य कर्तव्यं विशेषात् संगतं रहः ।
अज्ञातहृदयेष्वेवं वैरीभवति सौहृदम् ।।

[xii] अभिज्ञानशाकुन्तलम् – ७/२९

[xiii] अभिज्ञानशाकुन्तलम् – ७/२८

आखण्डलसमो भर्ता जयन्तमतिमः सुतः ।
आशीरन्या न ते योज्या पौलोमीसदृशी भव ।।